लेख

हिंसा व महिला सशक्तिकरण: एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विभूति पटेल

मथुरा, एक किशोरी थी जब दो पुलिसवालों ने पुलिस थाने में उसका बलात्कार किया था और थाने के बाहर खड़े उसके रिश्तेदार सहमे से सुबक रहे थे। 1972 में हुई इस घटना की क़ानूनी लड़ाई शुरू हुई जब एक महिला वकील ने घटना के तुरंत बाद इस मामले को अदालत में उठाया। सत्र न्यायालय ने मथुरा के चरित्र पर आरोप लगाया और दोनों पुलिसवालों को बरी कर दिया। उच्च न्यायालय के फ़ैसले में, आरोपियों को साढ़े सात की जेल की सज़ा दी गई जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने उलट दिया। इस फ़ैसले ने देश में बलात्कार-विरोधी अभियान को जन्म दिया, जिसकी मांग थी कि मथुरा बलात्कार केस को दोबारा खोला जाए और बलात्कार क़ानून में संशोधन किया जाए। उस समय के जाने-माने वकीलों ने इस मुद्दे को उठाया, साथ ही राष्ट्रीय और राज्य प्रेस ने भी इस मुद्दे पर खुलकर आवाज़ बुलंद की। नई दिल्ली के महिला समूहों का गठन भी इसी आंदोलन के आसपास हुआ। उन्होंने आम सभाएं और पोस्टर अभियान आयोजित किए, नुक्कड़ नाटक रचे, अपनी मांगों के समर्थन में हज़ारों हस्ताक्षर इकट्ठा किए, रैलियां और प्रदर्शन किए, विधायकों और प्रधानमंत्री को याचिकाएं दीं तथा बलात्कार पीड़ितों के साथ किए जाने वाले व्यवहार के बारे में आम जनता को जागरूक किया। यह अगुवाई मध्यम, शिक्षित और शहरी महिला वर्ग की ओर से हुई। बाद में, राजनैतिक दल और बड़े संगठन भी इस अभियान से जुड़ गये।

बलात्कार क़ानूनों में सुधार

बलात्कार क़ानून में संशोधन की मांग में महिलाओं को यौनिकता की सामाजिक रचना, जिसमें समाज व नागरिक समाज की पूर्वधारणाएं झलकती थीं, से जुड़े मुद्दों को अहमियत दी गई, जैसे बलात्कार पीड़ित का पिछला यौनिक इतिहास, आपराधिक न्याय पद्धति की प्रक्रियाएं, प्रथम सूचना रिपोर्ट, चिकित्सीय परीक्षण, भारत में हिरासत में महिलाओं के अधिकार आदि। नारीवादियों के बीच सक्रिय बहस के बाद यह तय किया गया कि महिला संगठनों की निम्न मांगे होनी चाहिए:

1. महिला के साथ पूछताछ केवल उसके निवास स्थान पर ही की जानी चाहिए।
2. पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के दौरान, महिला को अपने साथ कोई पुरुष संबंधी, दोस्त अथवा महिला सामाजिक कार्यकर्ता को रखने की इजाज़त मिलनी चाहिए।
3. हिरासत में रखी गई महिलाओं को महिलाओं के लिए बनाए गए विशेष बंदीगृह में ही रखा जाना चाहिए। अगर ऐसा कोई लॉक-अप न हो तो महिलाओं को बच्चों अथवा महिलाओं के संरक्षण व कल्याण के लिए बनाए गए केन्द्रों में ही रखा जाना चाहिए।
4. बलात्कार पीड़ित की मेडिकल रिपोर्ट में दिए जाने वाले निष्कर्ष का कारण लिखा जाना चाहिए और यह रिपोर्ट किसी भी हेराफेरी से बचाने के लिए बिना देरी मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए।
5. बलात्कार को सुनवाई के दौरान, बलात्कार पीड़ित के पिछले यौनिक बर्ताव को सबूतों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
6. रिपोर्ट दर्ज करने से इंकार करने वाले पुलिस अधिकारी को अपराध का दोषी माना जाना चाहिए।
7. मथुरा केस को मद्देनज़र रखते हुए, भारतीय दंड संहिता की धारा 375 जो स्पष्ट करती है कि महिला की सहमति को 'सहमति' तभी माना जा सकता है जब यह साबित हो जाये कि उसकी सहमति स्वतंत्र व स्वैच्छिक थी, में संशोधन किया जाना चाहिए।

8. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 111ए में 'साबित करने के भार' का प्रावधान बदला जाना चाहिए। उसमें यह जोड़ा जाना चाहिए कि जिन मामलों में अभियुक्त एक सरकारी सेवक, पुलिस अधिकारी, अधीक्षक अथवा जेल, अस्पताल या रिमांड होम का प्रबंधक हो, व जहां यौनिक संभोग साबित हो गया हो और महिला ने शपथपूर्वक बयान दिया हो कि उस संभोग में उसकी सहमति नहीं थी, तो अदालत यह मानेगी कि महिला की सहमति नहीं थी।

इस अंतिम मांग पर एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ था क्योंकि नारीवादियों का मत था कि बलात्कार के अपराध के स्वभाव, समाज में महिलाओं के ऊपर पुरुषों की दवाबकारी सत्ता, 'असहमति' साबित करने की असंभावना क्योंकि इसका सिर्फ़ यहीं तरीका हो सकता था कि महिला कहे उसकी सहमति नहीं थी, को ध्यान में रखते हुए, बलात्कार साबित करने की ज़िम्मेदारी आरोपी की होनी चाहिए, महिला की नहीं। परन्तु जन आंदोलन की पृष्ठभूमि से जुड़ी महिला कार्यकर्ताओं का यह विचार था कि ऐसे प्रावधानों का दुरुपयोग प्रशासन और स्थानीय हित पक्षधर व्यापार संघ के पुरुष सदस्यों, दलित, आदिवासी और किसान संगठन के कार्यकर्ताओं को सताने के लिए कर सकते हैं।

बहस के केंद्र में जेंडर

दिसम्बर 2012 के दिल्ली बलात्कार मामले ने जेंडर की सामाजिक रचना की बहस को और अधिक मुखर बना दिया। आम जनता, सामुदायिक नेता, अभिभावक, युवा, शिक्षक, नीति निर्माता, राजनेता और मीडियाः सभी समाज में यौन हिंसा की व्यापकता पर चर्चा रहे हैं।

भारतीय राज्य, देश के कई हिस्सों में, ख़ासतौर से जम्मू-कश्मीर, पूर्वोत्तर तथा छत्तीसगढ़ में, महिलाओं के साथ हिरासत में होने वाली हिंसा की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करता। ऐसे कई मामले अदालत में विचाराधीन हैं जिनमें राज्य अभिरक्षक जैसे पुलिस, उप-सैन्य बल के कर्मचारी अभियुक्त हैं। सरकार को चाहिए कि वह फौरन दोषियों को सज़ा देने के लिए कार्रवाई करे जिससे ऐसी घटनाएं दोबारा न हों। बलात्कार के संदर्भ में *भारतीय साक्ष्य अधिनियम* और बलात्कार से जुड़ी धारा 376 में सुधार को लेकर महिला अधिकार कार्यकर्ताओं की लंबे समय से जारी मांगों ने सरकार को *जस्टिस वर्मा समिति* के गठन के लिए विवश कर दिया। समिति ने अपने सशक्त सुझाव दिए कि यौन आक्रमण के मामलों में तात्कालिक न्याय और उपयुक्त सज़ा देने के लिए क़ानून में क्या सुधार किये जाएं।

आपराधिक क़ानून संशोधन बिल 2013, 19 मार्च 2013 को लोकसभा और 21 मार्च 2013 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया। भारत के राष्ट्रपति ने 2 अप्रैल 2013 को इस बिल पर अपनी मंजूरी प्रदान की और अब इस बिल को *आपराधिक क़ानून संशोधन अधिनियम 2013* के नाम से जाना जाता है। पर यह बड़े अफ़सोस की बात है कि महिला आंदोलन तथा जस्टिस वर्मा समिति के दो महत्वपूर्ण सुझावोंः वैवाहिक बलात्कार तथा भारतीय सेना द्वारा बलात्कार को आपराधिक कृत्य माना जाए, को इस अधिनियम में शामिल नहीं किया गया है।

महिला सशक्तिकरण पर प्रभाव

पिछली चार पीढ़ियों से, स्त्रीद्वेष सोच, बर्बरता, स्त्री-पुरुष संबंधों को यातना-उन्मादी बनाने वाली पोर्नोग्राफ़ी के अधिक प्रयोग, महिलाओं के पहनावे पर पश्चिमीकरण का प्रभाव, उपभोक्तावादी संस्कृति, के प्रभाव से महिलाओं के प्रति मर्यादापूर्ण व्यवहार जो सभ्य संस्कृति का हिस्सा था, अब महिलाओं के प्रति विद्वेष की भावना में बदल चुका है। भारत का शिक्षित मध्यम वर्ग जिसने भारत को "पोस्ट-फ़ेमिनिस्ट" घोषित कर दिया था अब अचानक उम्र दराज़ नारीवादियों को, जिन्होंने महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा को रोकने के सतत प्रयास किये हैं, सार्वजनिक मंचों पर वक्ता बनाकर पेश कर रहा है। पर नारीवादी बलात्कारियों के लिए मृत्यु दण्ड या रासायनिक बन्ध्याकरण की मांग की पक्षधर नहीं हैं।

पिछले महीनों देश भर में हुए हज़ारों प्रदर्शनों में महिलाओं व लड़कियों के लिए गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और अधिकारों की मांगें बुलंद की गई हैं। प्रदर्शनकारियों ने क़ानून, मेडिकल इलाज, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक सहायता के माध्यम से तत्कालिक राहत के साथ-साथ बलात्कार के उत्तरजीवियों के लिए दीर्घकालिक पुनर्वास उपायों की भी मांग की है। शहरों को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाने हेतु बेहतर आधारभूत संरचनाओं की आवश्यकता होती है जिनमें भली प्रकार निर्मित फुटपाथ और बस स्टॉप, हैल्पलाइंस तथा आपात्कालीन सेवाएं भी शामिल हैं। परिवहन सेवाओं का प्रभावी पंजीकरण, निगरानी और नियमन (चाहे वे सार्वजनिक, निजी या अनुबंधात्मक हों) उन्हें सभी के लिए सुरक्षित, आसानी से हासिल और उपलब्ध बनाने के लिए अनिवार्य है।

महिला आंदोलन ने राज्य सेवा में कार्यरत तथा विभिन्न संस्थानों में नियुक्त सभी अधिकारियों के लिए जेंडर संवेदनशीलता के अनिवार्य पाठ्यक्रम की मांग दोहराई है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सार्वजनिक स्थल यौनिक उत्पीड़न, शोषण और आक्रमण से मुक्त हों। इसका अर्थ यह भी है कि पुलिस बल को अपने पास शिकायत लेकर आने वाली महिलाओं का यौन शोषण रोकना होगा। उन्हें अनिवार्य रूप से एफ़.आई.आर. दर्ज करनी होंगी और शिकायतों पर काम करना होगा। सभी पुलिस थानों में सी.सी. टी.वी. कैमरे लगाये जाने चाहिए और भ्रष्ट पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। पूरे देश में बलात्कार तथा अन्य प्रकार की यौन हिंसा के मामलों पर सुनवाई के लिए फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट गठित किए जाने चाहिए। राज्य सरकारों को चाहिए कि वे ऐसे इलाकों में इन अदालतों के गठन को प्राथमिकता दे जहां इनकी सख़्त ज़रूरत है और इन मामलों पर छह माह के भीतर सज़ा सुनाए जाने का प्रावधान किया जाना चाहिए।

मीडिया की जीवंत बहसों में पुरुषों को 'शिकारी' और महिलाओं को 'शिकार' के रूप में चिन्हित किया जाता है। पितृसत्तात्मक सामाजिक ढांचों को भी बलात्कार व कार्यस्थल पर यौन हिंसा के डर; पुरुष व स्त्री के लिए यौनिकता के दोहरे मापदण्ड; और रूढ़िवादी ताक़तों विशेषकर धार्मिक नेताओं का खौफ़ दिखाकर, महिलाओं की यौनिकता, प्रजनन और श्रम पर नियंत्रण रखने का आरोप लगाया जा रहा है। उम्मीद है कि अब हमें कुछ सकारात्मक बदलाव देखने को मिलेंगे जो महिला सशक्तिकरण के नये मायने तय कर पाएंगे।

विभूति पटेल, *एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी मुंबई में महिला अध्ययन की प्रोफ़ेसर हैं।*